कष्ट-निवारक ठक्कर बापा

समाज-सेवा को समर्पित जीवन पर एक विहंगम दृष्टि

सागर तिवारी

... मैं निश्चयपूर्वक मानने लगा हूँ कि भारत को आज समग्र जीवन अर्पण कर देने वाले सेवकों की ज़रूरत है, फुरसत या सुविधा से काम करने वालों की नहीं। और जब तक आजीवन कार्य करने वाले भारत को नहीं मिलेंगे, तब तक हमारी कोई प्रगति नहीं हो सकेगी। सच्चे काम करने वालों के लिए रुपये के तो भण्डार पड़े हैं। उन्हें सच्चे काम करने वाले नहीं मिलते, इसलिए सब कुछ छोड़ कर जिस ध्येय को स्वीकार करने में यदि मैं भूल कर रहा होऊँ तो भी वह भूल शुभ इच्छाओं से और ईमानदारी से कर रहा हूँ। ... अब मेरी अंतर्व्यथा का अंत हो रहा है। जीवन में सभी वियोग दु:खदायी होते हैं, परंतु मैं तुम सबको उम्दा काम करने के लिए छोड़ कर जा रहा हूँ और समझता हूँ कि मुझे तुम सबके शुभाशीष प्राप्त हैं।

तुम्हारा भाई अमृतलाल (*जीवनी* : 82-83)

इन शब्दों के लेखक अमृतलाल विट्ठलदास ठक्कर पेशे से इंजीनियर थे। उन्होंने यह पत्र अपने परिजनों को 45 वर्ष की आयु में आजीवन सेवा का व्रत लेने की सूचना देने के लिए लिखा था। कालांतर में इस प्रतिज्ञा का निर्वहन उन्होंने इतना बख़ूबी किया कि स्वयं महात्मा गाँधी ने उन्हें 'बापा' (गुजराती भाषा में 'पिता') की पदवी से नवाज़ा। यह लेख भारत में पेशेवर समाज-सेवा के क्षेत्र में ठक्कर बापा के अमूल्य योगदान को याद करने की एक कोशिश तो है ही, साथ ही इसमें भारत के तत्कालीन सार्वजनिक जीवन और उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष के दायरे में राजनीतिक आंदोलन और समाज-सेवा के रचनात्मक कार्यों की अन्योन्यक्रिया की एक बानगी भी मिलती है।

ठक्कर बापा की सिफ़ारिश पर गाँधी ने 26 सितम्बर, 1915 को दूदाभाई नामक एक अछूत को परिवार-समेत औपचारिक तौर पर अपने आश्रम में शामिल किया। इस घटना ने नगर के सामाजिक और धार्मिक जीवन में एक खलबली सी पैदा कर दी। ... यह बात बहुत कम प्रचलित है कि गाँधी की राजनीति के स्नायुकेंद्र अर्थात् साबरमती आश्रम की रूपरेखा, योजना और इमारतों के निर्माण का शुरुआती कार्य ठक्कर बापा की देन है। 1917 के उत्तरार्ध में सत्याग्रह आश्रम हेतु साबरमती नदी के समीप 55 बीघे भूमि पर जो पहले-पहल ढाँचे की परिकल्पना की गयी, उसके सूत्रधार अमृतलाल विट्ठलदास ठक्कर ही थे।

I
आरम्भिक जीवन

अमृतलाल विट्ठलदास ठक्कर का जन्म 29 नवम्बर, 1869 को सौराष्ट्र के भावनगर शहर में हुआ। उनके पिता विट्ठलभाई लालजी ठक्कर लोहाणा जाति के प्रतिष्ठित सदस्य थे। यूँ तो इस समुदाय की गिनती क्षत्रियों में होती थी किंतु इसकी कई पीढ़ियाँ तरह-तरह के कारोबार और धंधों में सक्रिय रही हैं। व्यापारियों के रूप में कई नामचीन धनाढ्य सेठ इस समुदाय से आगे आते रहे हैं। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध से तो शिक्षा के क्षेत्र में भी लोहाणा कुल के वंशजों ने काफ़ी तरक़्क़ी की। अमृतलाल के पिता विट्ठलभाई भी उच्च अंग्रेज़ी शिक्षा के बड़े पैरोकार थे और आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद उन्होंने अपने पुत्रों के शिक्षा-अर्जन में कोई कसर नहीं छोड़ी। संस्कारों के लिहाज़ से अमृतलाल का परिवार कट्टर वैष्णवों का घराना था और वही मूल्य उन्हें बचपन में विरासत के रूप में मिले।

1886 में सोलह वर्ष की आयु में अमृतलाल ने मैट्रिक किया। इसके बाद पिता ने अपने तरुण पुत्र का दाख़िला पूना के एक प्रतिष्ठित कॉलेज में सिविल इंजीनियरिंग पाठ्यक्रम में करा दिया। अगले तीन वर्षों तक विट्ठलभाई ने तमाम कठिनाइयों के बावजूद क़र्ज़ लेकर तथा पत्नी के गहने गिरवी रखकर अपने पुत्र की व्यावसायिक शिक्षा को अंजाम तक पहुँचाया। अमृतलाल ठक्कर ने अपनी शिक्षा पूरा करने के लिए अपने माँ-बाप का यह बलिदान उम्र भर कृतज्ञतापूर्वक याद रखा।

1890 में युवा अमृतलाल एलसीई (लाइसेंटिएट ऑफ़ सिविल इंजीनियरिंग) की उपाधि लेकर उत्तीर्ण हुए। उनकी पहली नौकरी शोलापुर ज़िले में बारसी रेलवे लाइन बिछाने के कार्य में ओवरसियर की रूप में थी। शायद वे 75 रुपये माहवार की इस नौकरी से संतुष्ट नहीं थे और जल्दी ही उन्हें भावनगर-गोंडल-जूनागढ़-पोरबंदर रेलवे में असिस्टेंट इंजीनियर का काम मिल गया। यहाँ उन्हें क़रीब पौने दो सौ रुपये माहवार की आमदनी होने लगी जिससे वे अपने कुनबे की आर्थिक मदद करने में सक्षम हो गये। उनकी कार्यदक्षता, उद्योगशीलता और प्रामाणिकता की चर्चा होने लगी। परंतु अपनी

ईमानदारी की वजह से वे इंजीनियरिंग विभाग के आला अफ़सरों की आँख में खटकने भी लगे। यह विभाग काजल की कोठरी के समान था, जहाँ सभी अपने-अपने ओहदे और सुभीते के अनुसार रिश्वत खाते थे। जब इस युवा इंजीनियर की भ्रष्टाचार विरोधी प्रवृत्ति रंग दिखाने लगी तो बहुत से विभागीय कर्मचारियों की ऊपरी आमदनी पर ख़तरा मँडराने लगा। परिणामस्वरूप उनके ख़िलाफ़ साज़िशें शुरू हो गयीं। इन सबसे परेशान होकर स्वाभिमानी ठक्कर ने दो-ढाई वर्ष में ही इस नौकरी से त्यागपत्र दे डाला।

इसके बाद उन्हें वढवाण राज्य में मुख्य इंजीनियर के ओहदे पर नियुक्ति मिल गयी। वे कुल तीन साल तक इस पद पर रहे और अपनी साख में इज़ाफ़ा करते रहे। इस दौरान रजवाड़ों में व्याप्त भ्रष्ट आचरण से भी इस युवक का क़रीबी साक्षात्कार हुआ। उन्हें अगली नौकरी पोरबंदर राज्य में मिली जहाँ वे पुन: मुख्य इंजीनियर के रूप में पदासीन हुए। यहाँ का प्रवास पाँच वर्ष लम्बा रहा और पोरबंदर में ही ठक्कर का परिचय एक और राजकर्मी डॉ. हरि श्रीकृष्ण देव से बढ़ा। पोरबंदर में ही उन्होंने पहली बार अकाल कष्ट-निवारण के काम का अनुभव प्राप्त किया। इसी बीच उन्हें ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका (आज का युगाण्डा) में रेलवे लाइन बिछाने के लिए तीन सौ रुपये महीने की नौकरी करने का अवसर मिला। परिजनों की सहमति से उन्होंने इस तीन वर्षीय अनुबंध को स्वीकार कर लिया। 1903 में युगाण्डा से वापसी के पश्चात् उन्हें डॉ. देव की सिफ़ारिश पर सांगली राज्य में मुख्य इंजीनियर की नौकरी मिली। कुल ढाई वर्ष इस ओहदे पर बिताने के बाद ठक्कर ने अपने सांसारिक गृहस्थ जीवन के अंतिम पड़ाव के रूप में मुम्बई महानगरपालिका की नौकरी स्वीकार की।

ठक्कर का विवाह उस समय के रीति-रिवाज़ों के अनुसार लगभग केवल बारह वर्ष की आयु में जीवकोर नामक कन्या से हो गया। 1892 में ठक्कर दम्पती के यहाँ एक बालक का जन्म हुआ जिसका दुर्भाग्यवश छह वर्ष की अल्प-आयु में ही देहांत हो गया। जीवकोर शारीरिक रूप से दुर्बल थीं और प्रसूति के वक़्त उचित देखभाल के अभाव में उन्हें प्रदर रोग लग गया। इसके बाद उनका शरीर लगातार क्षीण होता चला गया। अपने बेटे की मृत्यु से आहत जीवकोर उन्माद की शिकार हो गयीं। जब ठक्कर बापा अफ्रीका में कार्यरत थे, उस बीच इस रोग का प्रभाव गहराता चला गया। अफ्रीका से वापसी के उपरांत सांगली राज्य में नौकरी करते समय इस रजवाड़े में बिताया हुआ समय (1903-05) ठक्कर बापा और जीवकोर के दाम्पत्य जीवन का इकलौता सुखद दौर रहा। ख़ाली वक़्त मिलने पर दोनों हरिपुरा में कृष्णा नदी के तट पर लम्बी सैर पर जाते और बातें करते। किंतु नियति को कुछ और ही मंजूर था। आख़िरकार जीवकोर क्षय रोग़ से भी पीड़ित हो गयीं। जब ठक्कर दम्पती मुम्बई पहुँचे, तब जीवकोर का स्वास्थ्य तेज़ी से गिरने लगा। इस दौरान ठक्कर ने अपनी मरणासन्न पत्नी की काफ़ी सेवा की, किंतु 1907 में उनका देहांत हो गया। इस समय ठक्कर की उम्र केवल 39 वर्ष की थी। पिता की कोशिशों से ठक्कर बापा का पुनर्विवाह दिवालीबाई नामक तरुण कन्या के साथ सम्पन्न हुआ। किंतु होनी ने मानो ठक्कर की गृहस्थी न बसने देने का संकल्प लिया हुआ था। दूसरी पत्नी का स्वास्थ्य भी तेज़ी से बिगड़ा और क़रीब दो वर्ष बाद दिवालीबाई ने भी दम तोड़ दिया। इस प्रकार दो दफ़ा गृहस्थी बसाने में विफल अमृतलाल ने अंततः यह ख़याल ही छोड़ दिया। वे लिखते हैं :

> 1912-13 के बाद से मैं एकाकी स्थिति में रहा हूँ ... और रहने में आनंद महसूस होता है। स्त्री और बच्चे न होने की कमी महसूस नहीं हुई और इसीलिए गृहस्थी छोड़ कर देश सेवा के काम में लग जाने की प्रवृत्ति हुई जिसमें मुझे ईश्वर की प्रेरणा के सिवाय और कुछ दिखाई नहीं देता। (*जीवनी* : 43)

II

सेवा-जीवन की ओर और मुम्बई प्रवास

ठक्कर बापा ने अपने पिता विट्ठलभाई लालजी को सदैव अपना प्रथम गुरु माना। उन्हीं से मानवता के प्रति सेवा-भाव की प्रवृत्ति ठक्कर को विरासत में मिली थी। विट्ठलभाई की आर्थिक स्थिति बहुत ही साधारण रही, किंतु सामाजिक प्रतिष्ठा में वे अपने परिजनों में सबसे आगे रहे। इसका प्रमुख कारण था कि वे अपने लोहाणा जातिभाइयों के उद्धार हेतु सदैव प्रयत्नशील रहते थे। विशेषकर शिक्षा में उन्हें बहुत दिलचस्पी थी। उन्होंने अपनी जाति के बच्चों के लिए पढ़ने की सुविधाएँ प्रशस्त कीं। अपने जीवन के उत्तरार्ध में विट्ठलभाई ने लोहाणा जाति के विद्यार्थियों के लिए लोहाणा छात्रालय भी शुरू किया।

जब ठक्कर बापा पोरबंदर में अपने कार्यकाल के अंतिम वर्ष में थे, तब उनका एक अत्यंत दुखद घटना से साक्षात्कार हुआ। 1900 का अकाल पूरे सौराष्ट्र में पाँव पसार चुका था। इंजीनियर ठक्कर को भादर का पुल बाँधने की कठोर ज़िम्मेदारी मिली। नवीबंदर गाँव में मिट्टी हटाने के लिए हज़ारों अकाल-पीड़ितों को ठक्कर के प्रबंधन में काम पर लगाया गया। इन्हीं में से एक ग़रीब किसान दम्पती का देहांत हो गया जिनके तीन छोटे बच्चे थे। इनमें से एक की उम्र मात्र तीन मास थी और सबसे बड़ा बालक तेरह-चौदह वर्ष का था। ठक्कर लिखते हैं :

> ये बड़े लड़के दो-तीन मास के भाई को कैसे सँभाल सकते थे? इसलिए इन लड़कों ने इस छोटे बच्चे को जीता ही गाड़ दिया। मेरे मातहत हो रहे कष्ट-निवारण केंद्र में ही यह घटना हुई थी। इसका मुझे बड़ा दुःख हुआ और उसकी याद तो वर्षों तक बनी रही। आज तक मैं उस घटना को भूल नहीं पाया हूँ।' (*जीवनी* : 50)

इस घटना के थोड़े समय बाद ठक्कर पूर्वी अफ्रीका कूच कर गये। अपनी 300 रुपये मासिक आय का आधा हिस्सा वे अपने पिता को भेज देते। इन पैसों की मदद से विट्ठलभाई ने अपने अकाल पीड़ित जाति-बंधुओं के लिए एक भोजनालय शुरू कराया। इस प्रकार वे प्रतिदिन 600-700 ग़रीब लोहाणों को एक बार खिचड़ी और रोटी का भरपेट भोजन मुहैया कराते थे। साथ ही इन लोहाणों को वस्त्रदान भी दिया जाता था।

अकाल की अवधि के दौरान विट्ठलभाई अपने पुत्र को नियमित रूप से हर पखवाड़े पत्र लिखते। इसमें वे सौराष्ट्र के अकाल-पीड़ितों की बदतर होती हालत का करुण वर्णन करते और साथ ही अपने हाथों संचालित जातिभाइयों के लिए राहत-कार्यों का ब्योरेवार विवरण लिखते। बापा के जीवनीकार कांतिलाल शाह के अनुसार सुदूर अफ्रीका में रह रहे युवक अमृतलाल ठक्कर पर इन पत्रों का गहरा असर हुआ। अपने पिता द्वारा लोहाणा जातिभाइयों की निःस्वार्थ मदद होते सुनकर पुत्र को आनंद और गर्व होता। किंतु सम्पूर्ण मानवता को एक समझने वाले ठक्कर के मन में अपने पिता के प्रति एक टीस बनी रही। शाह लिखते हैं :

> उनके मन में सवाल उठता : पिता अपना सेवाकार्य केवल जातिभाइयों तक ही क्यों मर्यादित रखते हैं? क्या अन्य लोगों को अकाल की पीड़ा नहीं सताती होगी? और यदि दूसरों को भी दुःख का अनुभव करना पड़ता हो तो उनके प्रति भी उन्हें अपना कर्त्तव्य-पालन करना चाहिए या नहीं। यह और इस प्रकार के अनेक विचार उनके मन में उठते और वे संकल्प करते कि कभी इस प्रकार का कार्य मेरे हिस्से में आएगा, तो मैं न केवल बिना किसी जात-पाँत के भेद के सब जातियों की ही सेवा करूँगा, बल्कि देश-विदेश की मर्यादा लाँघ कर चीन जैसे दूर स्थान पर भी सेवा-कार्य की ज़रूरत होगी तो वहाँ जाऊँगा और ग़रीबों की सेवा करूँगा। (*जीवनी* : 19-20)

1903 में अफ्रीका से वापसी के पश्चात् ठक्कर ने नौकरी करते हुए अपने दूसरे गुरु प्रो. धोंडो केशव कर्वे के सम्पर्क में आये। प्रो. कर्वे का नाम मुम्बई प्रांत के अग्रणी समाज-सुधारकों में शुमार किया जाता था। स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए मशहूर कर्वे पुणे के फर्ग्युसन

महाविद्यालय में कार्यरत थे। उन्होंने हाल ही में विधवाओं की दुर्दशा को सुधारने का बीड़ा उठाया था। इन दुत्कारी गयी उत्पीड़ित स्त्रियों को शिक्षित करके स्वावलम्बी बनाने हेतु कर्वे ने पुणे से कुछ मील दूर हिंगणेभद्रुक नामक स्थान पर विधवा आश्रम खोला था। 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' के विरोधी कर्वे ने रूढ़िवादियों को धता बताते हुए स्वयं एक विधवा से विवाह भी रचा कर समाज के समक्ष ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत किया।

ठक्कर के एक छोटे भाई की मृत्यु उनके अफ़्रीका-प्रवास के दौरान ही हो गयी थी। उसकी विधवा की करुण दशा का उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव था। कर्वे के शानदार काम के बारे में सुन कर ठक्कर प्रभावित हुए बिना न रह सके। उन्होंने अनेक बार हिंगणेभद्रुक जाकर कर्वे की संस्था के संचालन को भी देखा। धीरे-धीरे यह परिचय निजी मित्रता में परिणत हो गया और जीवनपर्यंत दोनों ने इसे मर्यादापूर्वक निभाया। इस मित्रता की वजह से ही कर्वे भावनगर भी आने-जाने लगे और फलत: ठक्कर बापा के शहर में महिला-शिक्षा का सूत्रपात भी हुआ। सांगली-प्रवास के दौरान ही 1904 में ठक्कर का परिचय गोपाल कृष्ण गोखले के साथ हुआ। बापा के मित्र डॉ. हरिकृष्ण देव का गोखले से अच्छा संबंध था और इसी कारण ठक्कर उनसे एक दफ़ा थोड़े समय के लिए मिल सके थे।

ठक्कर बापा के जीवन में उनके मुम्बई प्रवास की अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका है। 1905 से 1914 के इन नौ वर्षों में उनके अंदर सुप्त-प्राय: सेवा-भावना प्रज्वलित हो उठी। साथ ही वे धीरे-धीरे गृहस्थी के बंधनों से स्वत: मुक्त होते चले गये। आइए, इस दौर पर एक नज़र डालें।

सांगली राज्य में एक अंग्रेज़ हुक्मरान से खटपट होने के कारण उन्हें नौकरी से हाथ धोना पड़ा। इसके तुरंत बाद उन्हें मुम्बई म्युनिसिपैलिटी के अंतर्गत कुर्ला में कचरा ढोने वाली लाइट रेलवे के निरीक्षक का पद मिला। इस लाइन के मातहत मुम्बई के अलग-अलग मुहल्लों का कूड़ा-करकट कुर्ला इलाक़े के पार चेम्बूर के निकट सैकड़ों एकड़ ज़मीन में बने गड्ढ़ों में डाला जाता था। अमृतलाल का काम कचरे की लदाई-भराई के निरीक्षण का था। चेम्बूर के पास म्युनिसिपैलिटी के भंगी मज़दूर सारी गाड़ी को ख़ाली करके उसे साफ़ करते थे। यहाँ कार्यरत मज़दूरों की दशा बेहद दयनीय थी। इनकी बस्तियाँ गंदी और निचली जगहों पर स्थित थी। टूटे हुए लोहे के टीन, टाट के टुकड़ों और सड़े हुए बाँस की खपच्चियों की मदद से ये भंगी मज़दूर मिट्टी के झोपड़े खड़े करते तथा असहनीय दुर्गंध और गंदगी के बीचो-बीच गुज़र-बसर करते थे। ठक्कर बापा ने इसे जीते-जागते नर्क की संज्ञा दी। उनके अनुसार यहाँ के मज़दूरों का काम मैला उठाने से भी ज़्यादा ख़राब और गंदा था। परंतु, इन मज़दूरों के पास अपनी रोज़ी-रोटी का इसके अलावा कोई और साधन नहीं था। चकाचौंध से भरपूर मायानगरी मुम्बई में ही मौजूद इन भंगी मज़दूरों से संपर्क ने ठक्कर की आत्मा को झकझोर कर रख दिया। इनकी भयावह स्थिति का सटीक आकलन वे शायद इसलिए भी कर पाए क्योंकि ये लोग अधिकांशत: गुजरात-काठियावाड़ से आये थे और उनकी मातृभाषा गुजराती ही थी। 1900 के छप्पनिया अकाल के दौरान कुछ भंगी/ढेढ़ अपना वतन छोड़कर मुम्बई पलायन कर गये थे। बाद में अच्छे वेतन के लालच में उनके कई अन्य सगे-संबंधियों ने भी यही रास्ता अख़्तियार किया।

इन मज़दूरों की परेशानियों का कोई अंत न था। जगह के स्थायी अभाव में अक्सर एक ही झोपड़ें में पूरा-पूरा संयुक्त परिवार रहा करता था। स्वच्छता तो दूर, इन परिस्थितियों में नीति-मर्यादा भी लेशमात्र भर थी। इन सभी मुश्किलों से परे एक और विकराल समस्या थी, जिसका नाम था 'दस्तूरी'। रिश्वत में दी जाने वाली यह रक़म सौंपे बग़ैर किसी भी भंगी मज़दूर की नौकरी का पक्का होना नामुमकिन था। स्वाभाविक रूप से जो लोग ग़रीबी और भुखमरी से लाचार हो कर मुम्बई पलायन करते, उनके पास अमूमन 'दस्तूरी' देने लायक़ 50-60 रुपये नहीं होते थे। अत: आला अफ़सरों की दाढ़ गीली करने के लिए इन भंगी मज़दूरों को भारी ब्याज पर किसी मारवाड़ी या पठान से यह रक़म उधार लेनी पड़ती थी। यह सूदखोर व्यापारी वर्ग भंगियों की निरक्षरता का फ़ायदा

उठाता। बही-खातों पर कर्ज़ की रक़म अधिक लिखी जाती और उस पर चढ़ता चक्रवर्ती ब्याज जिसे चुकाते-चुकाते मज़दूरों की कमर टूट जाती। अमूमन 'दस्तूरी', के जंजाल से इन मज़दूरों को जीवन भर निजात नहीं मिलती। वे एक बंधुआ मज़दूर की तरह ज़िंदगी गुज़ारते। इन भंगियों की दशा देख कर ठक्कर के दिल से आह तो निकलती, पर उन्हें उनकी मदद के लिए कोई उचित मार्ग नहीं सूझता। इसी महत्त्वपूर्ण पड़ाव पर अमृतलाल ठक्कर का सम्पर्क अपने जीवन के तीसरे प्रमुख गुरु से हुआ।

ये थे विट्ठल रामजी शिंदे (1873-1944)। शिंदे महाराष्ट्र के निवासी थे और उन्होंने ढेढ़ भंगी, चमार, महार इत्यादि अस्पृश्य मानी जाने वाली जातियों की सेवा करने का जीवन-व्रत लिया था। उन्होंने मुम्बई प्रेसीडेंसी में जगह-जगह अंत्यजों के लिए पाठशालाएँ खोलकर इस काम को आगे बढ़ाया। शिंदे ने डिप्रेस्ड क्लासेज़ मिशन की स्थापना की जिसकी कमेटी के अध्यक्ष न्यायाधीश सर नारायण गणेश चंदावरकर थे। इस मिशन ने अंत्यजों के लिए कई प्राथमिक पाठशालाएँ तथा मुम्बई शहर में एक छात्रावास की स्थापना की। शिंदे मुक्ति सेना के सैनिकों की भाँति लाल साफ़ा बाँधते और लम्बी काली दाढ़ी रखते थे। उन्होंने मुम्बई म्युनिसिपैलिटी में कार्यरत भंगी मज़दूरों के बच्चों के लिए एक पाठशाला की शुरुआत की थी। यहीं से ठक्कर का संबंध शिंदे से सधा। उनकी कार्यपद्धति से ठक्कर को बहुत कुछ सीखने को मिला। बापा ने शिंदे को श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए लिखा,'पिता के बाद सार्वजनिक सेवा का कार्य मैंने उनके चरणों में बैठकर सीखा है। उम्र में वे मुझसे कहीं छोटे थे तो भी राष्ट्रहित के कार्यों के अध्ययन में मुझसे कहीं आगे बढ़े हुए थे। मुम्बई की तरफ़ दलित जातियों के कल्याण की हलचल के वे पिता थे।' (*जीवनी* : 68)

मुम्बई में ही अपने कार्य-प्रवास के दौरान ठक्कर अपने चौथे गुरु गोपाल कृष्ण देवधर के सम्पर्क में आये। देवधर सर्वेंट्स ऑफ़ इण्डिया सोसाइटी (भारत सेवक समाज) के आजीवन सदस्य थे। 1905 में गोपाल कृष्ण गोखले द्वारा पुणे शहर में इस संस्था की स्थापना की गयी थी। भारत में पेशेवर समाज-सेवा के इतिहास में यह एक मील का पत्थर कहा जा सकता है। न सिर्फ़ सेवा-क्षेत्र अपितु इस संस्था ने गाँधीवादी स्वाधीनता आंदोलन के जनाधार को बढ़ाने में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया जिसकी समीक्षा होना अभी तक बाक़ी है। गोखले कमाल के दूरंदेशी थे। इस संस्था को खड़ा करने के पीछे उनका इरादा था कि पेशेवर समाज-सेवकों का यह समूह भारतवर्ष में मौजूद तमाम विषम मसलों का व्यवस्थित अध्ययन करके उनसे निपटने का मार्ग प्रशस्त करें। समाज में सम्मिलित होने के इच्छुक व्यक्तियों को आवेदन देना होता था। एक बार दाख़िला मिल जाने के पश्चात् पूरे पाँच वर्षों तक सामाजिक, आर्थिक एवं

उनके मन में सवाल उठता : पिता अपना सेवाकार्य केवल जातिभाइयों तक ही क्यों मर्यादित रखते हैं? क्या अन्य लोगों को अकाल की पीड़ा नहीं सताती होगी? ... इस प्रकार के अनेक विचार उनके मन में उठते और वे संकल्प करते कि कभी इस प्रकार का कार्य मेरे हिस्से में आएगा, तो मैं न केवल बिना किसी जात-पाँत के भेद के सब जातियों की ही सेवा करूँगा, बल्कि देश-विदेश की मर्यादा लाँघ कर चीन जैसे दूर स्थान पर भी सेवा-कार्य की ज़रूरत होगी तो वहाँ जाऊँगा और ग़रीबों की सेवा करूँगा।

राजनीतिक मसलों का सिलसिलेवार अध्ययन करना होता था। वरिष्ठ सदस्यों के कंधों पर नवागंतुकों की शिक्षा-दीक्षा की ज़िम्मेदारी होती थी। दीक्षा-अवधि के दौरान वे प्रयत्न करते थे कि कुछ चुनिंदा विषयों पर विशेषता का विकास भी हो। इस सबके बीच यदि देश के किसी भी हिस्से से मदद की गुहार आती तो भारत सेवक समाज के इन कार्यकर्त्ताओं को एक निश्चित समयावधि के लिए प्रतिनियुक्त किया जाता था। सभी सदस्यों को उनके जीवनयापन के साधन मुहैया कराना समाज का दायित्व होता। इस संस्था का एक स्वर्णिम सिद्धांत यह था कि हर वर्ष की जून माह में सेवक पुणे स्थित मुख्यालय में एक महीने का प्रवास करते। यहाँ चर्चाओं और विचार-विमर्श के मध्य अनेक मसलों पर संस्था की (राजनीति समझ) का आकलन होता। साथ ही गुज़रे वर्ष की गतिविधियों की समीक्षा भी की जाती।

ठक्कर बापा के चौथे गुरु गोपाल कृष्ण देवधर संस्था में सम्मिलित प्रथम तीन व्यक्तियों में से एक थे। राजनीतिक तौर पर वे नरम दल से सम्बद्ध थे तथा तिलक जैसी गरमदली राजनीति के विरोधी भी। देवधर ने पुणे शहर में महिला-उत्थान हेतु सेवा-सदन नामक संस्था का सफलतापूर्वक संचालन किया था। मुम्बई में उन्होंने अंत्यजों के बीच काम करने की ठानी थी। समाज-सेवा के कार्यों में गहरी दिलचस्पी के अलावा देवधर अर्थशास्त्र के विद्वान भी थे। वे दैनिक रूप से बारह से पंद्रह घंटे काम करने के अभ्यस्थ थे। उनकी विशेष रुचि सहकारी समितियों के ज़रिये समाज के ग़रीब तबक़ों की ऋण-मुक्ति में थी।

शिंदे और देवधर सरीखे निष्णात गुरुओं का संसर्ग मिलने तथा भंगी मज़दूरों के दु:ख-दर्द का अवलोकन करने से ठक्कर पूर्ण रूप से परिवर्तन की राह पर निकल पड़े। गृहस्थी की मज़बूत गाँठें तो धीरे-धीरे टूट ही रही थीं। ठक्कर बापा अपनी कमाई का आधा हिस्सा (डेढ़ सौ रुपये मासिक) सार्वजनिक संस्थाओं को दान में देने लगे। इस पर भी उनके भीतर का सेवाभाव तृप्त न हो सका। नौकरी के साथ-साथ भंगियों की सेवा उन्हें नाक़ाफ़ी मालूम पड़ रही थी। देश की दरिद्रतापूर्ण स्थिति के ऐसे सजीव अनुभव ठक्कर को हो चुके थे कि उनमें शनै: शनै: भारत सेवक समाज का पूर्णकालिक सदस्य बनने की मनोकामना बलवती हो चली। दूसरी पत्नी के निधन के बाद तो देवधर दादा और भरत सेवक समाज से ठक्कर का नाता तेज़ी से प्रगाढ़ होता चला गया। रोज़ शाम को वे म्युनिसिपैलिटी कार्यालय से वापस आते हुए सैंडहर्स्ट रोड पर स्थित समाज के मुम्बई कार्यालय जाने लगे। यहाँ पर ठक्कर देवधर दादा के साथ अछूतोद्धार, अंत्यज-सेवा, म्युनिसिपैलिटी के भंगी मज़दूरों की ऋण-मुक्ति जैसे विषयों पर चर्चा और विचार-विमर्श करते।

ठक्कर ने अपनी नौकरी छोड़कर सेवा-व्रत लेने की इच्छा अपने पिता के सामने प्रकट की। विट्ठलभाई ने यह कहकर बापा को मना लिया कि उनकी मृत्यु तक इस निर्णय को वे टाल दें। बापा ने भी अपने पिता की इच्छा का आदर किया। विट्ठलभाई अपने पुत्र के साथ रहने मुम्बई आ गये, परंतु बहुत जल्द लकवे का आघात होने से उन्होंने बिस्तर पकड़ लिया। अमृतलाल ने अपने पिता की जम कर सेवा की।

इसी बीच ठक्कर बापा को एक अग्नि-परीक्षा से गुज़रना पड़ा। यह 1912 की बात है। 'आर्यन ब्रदरहुड' नाम से मुम्बई के कुछ समाज-सुधारकों ने एक सहभोज का आयोजन किया जिसमें सभी जातियों के लोगों को आमंत्रित किया गया। अमृतलाल ठक्कर ने भी इस भोज में हिस्सा लिया क्योंकि वे लोहाणा जाति के तंग दायरे को नहीं मानते थे। इस आयोजन में मुम्बई के प्रसिद्ध क्रिकेट खिलाड़ी बालू एवं उनके भाई ने भी भागीदारी की। वे दोनों अस्पृश्य जाति से आते थे। इस घटना से समस्त मुम्बई में हड़कम्प मच गया क्योंकि भाग लेने वालों के नाम दूसरे दिन अख़बार में छप कर आये। अन्य जाति पंचायतों की माफ़िक़ धोधारी लोहाणा पंचायत ने अमृतलाल ठक्कर को अपने सामने उपस्थित होने का निर्देश दिया। कुछ मित्रों की सलाह पर ठक्कर पंचों के सामने हाज़िर हुए। उन्होंने

बापा को नियमों की अवहेलना का दोषी क़रार दिया। बतौर सज़ा उन्हें अनिवार्य प्रायश्चित्त तथा डेढ़ सौ रुपये जुर्माना करने का निर्देश मिला।

नैतिक तौर पर मज़बूत धरातल पर होने के बावजूद ठक्कर घोर असमंजस में पड़ गये थे। उनके पिता बिस्तर पर थे और यदि बापा ने पंचों का फ़ैसला ठुकरा दिया होता तो निश्चय ही समाज उन्हें बहिष्कृत कर देता। ऐसी स्थिति में उनके पिता की अंतिम यात्रा में भी कोई लोहाणा शामिल न होता। ख़ुद विट्ठलभाई का अपने जातिबंधुओं से बहुत लगाव था और बापा को डर लगा कि यदि इस बदनामी के बारे में उन्हें ज़रा भी भनक लगी तो वे समय से पहले ही सिधार जाएँगे। इस प्रकार कुटुम्बनिष्ठा और सत्यनिष्ठा, पितृ–प्रेम और सत्यप्रेम की मनोवृत्तियों के घमासान में अमृतलाल फँस गये। इस नाजुक घड़ी में उनकी पितृनिष्ठा विजयी हुई। उन्होंने जुर्माने की रक़म अदा की और प्रायश्चित्तस्वरूप दाढ़ी–मूँछ मुड़वा डाली। जब वे घर वापस आये तो पिता के पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया कि उनके ससुराल में किसी का देहांत हो गया था इसलिए बाल उतरवाए हैं।

इस घटनाक्रम के कुछ ही वक़्त बाद सन् 1913 में बापा के पिता चल बसे। गृहस्थ जीवन की आख़िरी गाँठ अपने पिता को दिया हुआ उनका वचन ही था। इसके बाद उन्होंने तेज़ी से अपने महाभिनिष्क्रमण की तैयारी की। दिसम्बर, 1913 तक अपना मुम्बई का घर समेट कर अगले ही माह अपने ऊँचे सरकारी ओहदे से त्यागपत्र दे डाला। अपने पुराने मित्र डॉ. हरि श्रीकृष्ण देव के साथ ठक्कर ने सर्वेंट्स ऑफ़ इण्डिया सोसाइटी में आजीवन सदस्यता के लिए आवेदन किया। समाज के कुछ आला व्यक्तियों, जैसे वी.एस. श्रीनिवास शास्त्री, ने बापा की उम्र (45 वर्ष) का हवाला देते हुए उनको सम्मिलित किये जाने का विरोध किया। हालाँकि, गोखले ने इस विरोध को तवज्जो नहीं दी और एक पत्र में शास्त्री को लिखा :

> मि. ठक्कर के संबंध में बताऊँ तो वे मुम्बई म्युनिसिपैलिटी के सबसे शक्तिशाली अधिकारियों में से एक हैं। यह बात निश्चित है कि वे अपनी वर्तमान 360 रुपये मासिक की जगह से कहीं ऊँचे पद पर पहुँच सकते हैं। साथ ही हमारी मुम्बई की कुछ प्रवृत्तियों में वे पिछले दो साल से श्री देवधर के साथ काम करते रहे हैं। और यह सब अतिरिक्त कार्य वे म्युनिसिपल अधिकारी की हैसियत से काम का भार ढोते–ढोते करते रहे हैं। इस बात से आपको संतोष होना चाहिए। इनमें एक साधारण मनुष्य की उपेक्षा बहुत अधिक शक्ति है। देवधर इनके बारे में बड़ी ऊँची राय रखते हैं...
>
> मैं आपको दुबारा इतना बता देता हूँ की ठक्कर की श्रेणी के आदमी ही समाज की प्रतिष्ठा वास्तव में जमाएँगे। वे शक्तिमान, उत्साही और लगनवाले ही नहीं है। परंतु सच्चे नि:स्वार्थी और उदात्त स्वभाव के आदमी हैं। (*जीवनी* : 81)

छह फ़रवरी, 1914 को अमृतलाल ठक्कर तथा डॉ. देव विधिवत् समाज में सम्मिलित हुए।

ठक्कर बापा का कार्य–क्षेत्र अत्यंत विस्तृत था और देश के सबसे दुर्गम क्षेत्रों में आयी आपदाओं में भी वे तुरंत मदद करने के लिए कूद पड़ते। उनके मार्गदर्शन में कर्मठ सेवकों की एक पूरी पीढ़ी तैयार हुई। उन्होंने प्राकृतिक आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में खूब नाम कमाया। बाबू जगजीवन राम ने बापा के अस्सीवें जन्मदिन के उपलक्ष्य पर उन्हें आधुनिक युग के दधीचि की संज्ञा दी।

समाज के नियमों के अनुरूप ठक्कर की सेवा शिक्षा उनके गुरु देवधर दादा के मार्गदर्शन में हुई। इस दौरान मुम्बई शहर में समाज का दफ़्तर बापा का मुख्यालय रहा। तरह-तरह के राहत-कार्यों और जाँच-दौरों से निवृत्त होते ही ठक्कर यहाँ वापस लौट जाते।

समाज में शरीक होते ही उन्हें सर्वप्रथम युक्त-प्रांत (वर्तमान उत्तर प्रदेश) में अकाल निवारण के कार्य का संचालन करने भेजा गया। मथुरा और वृंदावन इलाक़े में अतिवृष्टि के कारण घास-चारे का अकाल पड़ गया था। इससे इलाक़े की मशहूर पशु-सम्पदा पर गहन संकट के बादल मँडरा रहे थे। समाज के एक अन्य सदस्य कृष्णदास चितालिया के साथ मिलकर ठक्कर ने यहाँ जम कर काम किया।

मुम्बई महानगर में भी ठक्कर ने लगन से सेवा कार्य जारी रखे। उनके करुणामय व्यक्तित्व से प्रभावित होकर कुछ भले भंगी मज़दूरों ने उनका साथ देना प्रारम्भ किया। इनमें नारायणभाई, कूकाभाई, हीराभाई और सामंत मास्टर प्रमुख थे। इनमें से कुछ तो जीवनपर्यंत बापा की टोली का हिस्सा रहे। देवधर दादा की पैनी आँखों के बीच ठक्कर बापा ने भंगी और ढेढ़ मज़दूरों की जीवन-समस्याओं का और भी सूक्ष्म अध्ययन किया। इस दौर में मुम्बई म्युनिसिपैलिटी में बिताए गये वर्ष, अनुभव और परिचित-गण ठक्कर बापा के बड़े काम आये। ख़ास तौर से देवधर दादा ने ठक्कर को सहकारी समितियों की मदद से ऋण-मुक्ति की योजना को सफल बनाने पर ध्यान केंद्रित करवाया।

1915 में विट्ठलभाई पटेल ने मुम्बई की धारा-सभा में अनिवार्य शिक्षा का बिल प्रस्तुत किया। इस मसौदे की पृष्ठभूमि तैयार करने में ठक्कर साहब ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। मुम्बई प्रेसीडेंसी के कई पिछड़े इलाक़ों में उन्होंने बैलगाड़ी से लम्बी यात्राएँ करके महत्त्वपूर्ण आँकड़े जुटाए और वहाँ शिक्षा के लिए ज़बरदस्त पैरवी की और बिल के लिए समर्थन जुटाया। जब ठोस तथ्यों पर आधारित यह बिल क़ानून के रूप में पारित हुआ तब उसे सही तरीक़े से अमल में लाने के लिए भी ठक्कर ने कई अध्ययनपूर्ण लेख प्रकाशित किये। मसलन, देश की प्रगति को सुनिश्चित करने के लिए प्राथमिक शिक्षा की अनिवार्य आवश्यकता को रेखांकित करते हुए उन्होंने लिखा कि, 'देश के लिए और अच्छे राज्यतंत्र के लिए जैसे सेना की ज़रूरत है, तार और डाक की ज़रूरत पड़ती है, रेलवे और नहर की योजनाओं की आवश्यकता होती है वैसे ही राष्ट्रव्यापी शिक्षा की भी उतनी ही ज़रूरत होती है। और जब तक केंद्रीय ख़ज़ाने से प्राथमिक शिक्षा के लिए रुपये का बंदोबस्त न हो, तब तक सार्वत्रिक अनिवार्य शिक्षा एक सुखद सपना ही बनी रहेगी। (*जीवनी* : 92)

इसी दौरान ठक्कर को मुम्बई कौंसिल के ग़ैर-सरकारी सदस्यों के मण्डल का मंत्री भी नियुक्त किया गया। यहाँ पर उन्होंने गुजरात और मुम्बई के शिक्षा विषयों एवं सामाजिक संस्थाओं का निकट से निरीक्षण किया। कालांतर में यह अनुभव बापा के बड़े काम आये।

III
गाँधीवादी आंदोलन और रचनात्मक कार्यक्षेत्र

1915 में दक्षिण अफ़्रीका से भारत वापसी के पश्चात् गाँधी पहले गुजरात और फिर सम्पूर्ण भारत में सर्वोच्च नेता के रूप में उभरे। तीन दशकों से अधिक लम्बी इस प्रक्रिया की समझ का अभी तक पूरी तरह से अनावरण नहीं हो सका है। गाँधी के नेतृत्व में चले तीन बड़े आंदोलनों असहयोग (1920-22), सविनय अवज्ञा (1931-33) एवं भारत छोड़ो (1942-43) पर ही अधिकतम शोध-कार्य हुआ है। इसी तर्ज़ पर इस दौर को बिपन चंद्र जैसे इतिहासकारों ने 'संघर्ष-विराम-संघर्ष' की संज्ञा भी दी है। लेकिन केवल ये तीन बड़े आंदोलन इस जटिल कालावधि का आदि और अंत नहीं थे। इनके पहले और बाद में गाँधी और उनके सहयोगियों ने अच्छी-ख़ासी ज़मीन तैयार की थी। इंदुलाल याज्ञिक, जो स्वयं भारत सेवक समाज के सदस्य रहे, ने स्वाधीनता के बाद गुजराती भाषा में एक आत्मकथा

प्रकाशित की।[1] हाल ही में इस महत्त्वपूर्ण संस्मरण का अंग्रेज़ी अनुवाद तीन खण्डों में मनोहर प्रकाशन से छपा है। इसका प्रथम खण्ड काफ़ी हद तक उस प्रक्रिया को दर्शाता है जिसके तहत गाँधी ने शुरुआती दौर में गुजरात के राजनीतिक पटल पर अपने पाँव जमाए।[2] गाँधी के नेतृत्व में एक सिकुड़े हुए अभिजनमूलक स्वधीनता आंदोलन द्वारा व्यापक जनाधार ग्रहण करना एक अत्यंत जटिल बहुआयामी प्रक्रिया थी जिसे सिर्फ़ राजनीतिक आईने में देखना ग़लत होगा। इस व्यापक गठजोड़ को अंजाम देने में गाँधी के ग़ैर-राजनीतिक सहयोगियों ने भी काफ़ी मशक़्क़त की। असल में गाँधी के राजनीतिक सिपहसालारों के विषय पर तो काफ़ी अध्ययन हो चुका है। लेकिन रचनात्मक कार्यों के क्षेत्र में भी उनके निकटतम सहयोगियों की सूची अभी तक अपने इतिहासकारों की बाट जोह रही है। गाँधी ने अपने इन चुनिंदा भागीदारों की मदद से रचनात्मक कार्यों की धुरी के इर्द-गिर्द कई गतिविधियों का संचालन किया। इनमें अकाल/बाढ़ कष्ट निवारण, खादी का प्रचार-प्रसार, अस्पृश्यता निवारण इत्यादि का प्रमुख स्थान था। ठक्कर बापा इन सभी कार्य-कलापों के साथ गहराई से जुड़े हुए थे। इसीलिए गाँधी के रचनात्मक कार्यों के महत्त्व व सार्थकता को समझने के लिए ठक्कर का जीवन एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कड़ी है। यहाँ रेखांकित करना आवश्यक है कि ठक्कर बापा ऐसे इकलौते शख़्स कदापि नहीं थे।

अफ्रीकी प्रवास के बाद गाँधी का भारत-पर्दापण और ठक्कर बापा का सार्वजनिक सेवाव्रत ग्रहण करना लगभग एक-डेढ़ वर्ष के अंतराल में फलीभूत घटनाएँ थी। ऐतिहासिक दृष्टि से यह एक अत्यंत भाग्यशाली संयोग समझा जाना चाहिए। प्रथम विश्व-युद्ध प्रारम्भ हो चुका था और सारे देश में यह ज़बरदस्त राजनीतिक सरगर्मी का दौर था। (दक्षिण अफ्रीका में वे काफ़ी नाम कमा चुके थे। भारत में भी कई लोग उन्हें उम्मीदों भरी कौतूहलता से देख रहे थे।) जब गाँधी भारत लौटे तब उन्होंने अपने गुरु गोपाल कृष्ण गोखले की सलाह पर कुछ समय तक वस्तुस्थिति समझने के लिए केवल यात्राएँ कीं। साथ ही उन्होंने सार्वजनिक बयानबाज़ी से ख़ुद को अलग रखा। उनकी चुप्पी ने उनके प्रति भारतीयों के आकर्षण को और भी गहरा करने का काम किया।

कुछ सोच-विचार के बाद गाँधी ने गुजरात को ही अपना प्रमुख आरम्भिक कार्य-क्षेत्र बनाने का निश्चय किया। इसकी नींव मई, 1915 में पड़ी। अहमदाबाद में एक आश्रम स्थापित किया गया। प्रारम्भ से ही गाँधी और ठक्कर दोनों की रुचि अस्पृश्यता निवारण में थी। ठक्कर बापा की सिफ़ारिश पर गाँधी ने 26 सितम्बर, 1915 को दूदाभाई नामक एक अछूत को परिवार-समेत औपचारिक तौर अपने आश्रम में शामिल किया। इस घटना ने नगर के सामाजिक और धार्मिक जीवन में एक खलबली सी पैदा कर दी। गाँधी के इस क़दम का रूढ़िवादियों ने घोर विरोध किया। और तो और, ऐसे लोगों ने आश्रम का बहिष्कार करने तक का विचार किया।[3] इसी दौरान गाँधी और ठक्कर के संबंधों को एक ठोस बुनियाद मिली। वे दोनों लगभग एक ही उम्र के थे और दोनों की मातृभाषा भी एक थी। जीवन-पर्यंत दोनों का संवाद मुख्यत: गुजराती में ही चला। ठक्कर की सेवापरायणता, निश्चयकर्म और ईमानदारी से तो गाँधी प्रभावित थे ही। इसके अलावा उन्होंने बापा के सिविल इंजीनियरिंग कौशल का उपयोग करने का भी निर्णय किया। यह बात बहुत कम प्रचलित है कि गाँधी की राजनीति के स्नायुकेंद्र अर्थात् साबरमती आश्रम की रूपरेखा, योजना और इमारतों के निर्माण का शुरुआती कार्य ठक्कर बापा की देन है। 1917 के उत्तरार्ध में सत्याग्रह आश्रम हेतु साबरमती नदी के समीप 55 बीघे भूमि पर जो पहले-पहल ढाँचे की परिकल्पना की गयी, उसके सूत्रधार अमृतलाल विट्ठलदास ठक्कर ही थे।[4]

---

[1] इस विचार के लिए मैं सीएसडीएस में होने वाली दोपहरीय चाय पर चर्चा का आभारी हूँ. मैं ख़ासतौर से इस बिंदु के पैरोकार डॉ. अवधेंद्र शरण को धन्यवाद देता हूँ.

[2] *सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय* , खण्ड XIII : 129.

[3] वही : 462.

[4] जी.एम.पवार (2013).

गाँधी अच्छी तरह समझते थे कि भारतीय परिपेक्ष्य में 'राजनीति' शब्द का अर्थ मात्र हुक़ूमत और आवाम के संबंधों तथा जनमानस के अधिकारों के संघर्ष तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता था। भारतीय समाज में स्वराज सही मायनों में तभी फलीभूत हो सकता था अगर राजनीति के ज़रिये रचनात्मक कार्यों को बढ़ावा मिलता। ठक्कर बापा जैसे सहयोगी गाँधी के *हिंद स्वराज* की इस परिकल्पना में भरोसेमंद सिपहसालार थे।

गाँधी और ठक्कर ने अपने रचनात्मक कार्यकलापों की एक महत्त्वपूर्ण धुरी प्राकृतिक आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में स्थापित की। भारतवर्ष में 70–80 फ़ीसदी बरसात जून से सितम्बर के बीच मानसूनी हवाओं के माध्यम से होती रही है। बीसवीं सदी के पूर्वार्ध तक बाँधों और जलाशयों का तंत्र बहुत व्यापक नहीं था। भू-राजस्व पर निर्भर अंग्रेज़ी राजतंत्र ने अपनी नींव मज़बूत करने हेतु उन्नीसवीं सदी में कुछ बड़ी नहर-सिंचाई परियोजनाएँ ज़रूर मुक़म्मल की थीं। लेकिन इनका प्रभाव-क्षेत्र अच्छा लगान चुकाने वाले इलाक़ों तक ही सीमित था। आबादी का सबसे बड़ा हिस्सा इन सुविधाओं से वंचित था। अतः हर चौमासे में देश का कोई न कोई हिस्सा या तो सूखे से ग्रस्त रहता अथवा बाढ़ की चपेट सहता। दोनों ही परिस्थितियों में जान और माल की भारी हानि होती। कृषि-पोषित अर्थव्यवस्था में पशु-धन जीवनयापन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। परंतु जहाँ इंसान ही तिल-तिल कर खप रहे हों, वहाँ पशुओं की मदद कौन करे। नतीजतन, अगर इंसानी जीवन बच भी जाते, तो भी पर्याप्त चारे के अभाव में गाय, बैल, बकरियाँ, घोड़े इत्यादि भारी संख्या में काल का ग्रास बन जाते। सबसे भारी हानि उन दुर्गम क्षेत्रों में होती थी जहाँ आवागमन की सुविधाएँ नाममात्र को ही थीं। सरकारी तंत्र अगर कभी बचाव की हरकत में आता भी तो उसमें सम्मिलित कर्मचारी वर्ग तमाम ख़तरों के भरे वनाच्छादित इलाक़ों में राहत-कार्य करने से कोसों दूर भागते। भूले-भटके वे अगर किसी प्रभावित क्षेत्र से गुज़रते तो भी खोखली शानो-शौक़त से गुरेज़ न करते। गोरे हुक़्मरानों के माफ़िक यह वर्ग भी पालकियों में बैठता, हुक़्म देता और लाट साहबों की तरह बरताव करता।

एक अरसे से ठक्कर बापा सरकारी कष्ट-निवारण कार्यों की इन समस्याओं को क़रीब से अनुभव कर रहे थे। उन्हें ग़ैर-सरकारी कष्ट-निवारण कार्य की उपयोगिता और अनिवार्यता उन्हें समझ में आ चुकी थी। कालांतर में उनका निश्चय और भी दृढ़ हो गया कि सरकारी मदद के अलावा सार्वजनिक संस्थाओं को भी इस क्षेत्र में आगे बढ़ कर हाथ बँटाना चाहिए। अकाल-कष्ट निवारण के क्षेत्र में गाँधी और ठक्कर के रिश्ते की बुनियाद 1920 के ओडीशा अकाल के दौरान पड़ी। पुरी शहर में केंद्रित इस विपदा ने बेहद भयावह रूप ले लिया था। गाँधी और भारत सेवक समाज के आग्रह पर ठक्कर वस्तु:स्थिति का आकलन करने वहाँ पहुँचे और आँखों-देखा हाल और दिल-दहलाने वाला वर्णन वापिस भेजा। इस वृत्तांत को कई समकालीन समाचार पत्रों तथा मुखपत्रों ने प्रकाशित किया। इन लेखों में सरकार की लापरवाही और निष्ठुरता भरी नीतियों की पुरज़ोर आलोचना की गयी। साथ ही भुखमरी से जूझती जनता एवं पशुओं की रसद मुहैया कराने के लिए चंदे का आह्वान भी किया गया था। इस विवरण को पढ़ कर कई उदार धनाढ्य लोगों के दिल पसीजे और मदद के लिए ज़रूरी लगभग एक लाख रुपये की राशि जुटाई गयी। इन पैसों की बदौलत ठक्कर ने पुरी और उसके आस-पास के गाँवों में कष्ट-निवारण भोजनालय चालू किये और बहुत से लोगों को मौत के मुँह में जाने से बचाया।

इस अवधि में बापा का बापू से पत्राचार विकसित हुआ। अपने पत्रों में वे काम का ब्योरा भेजते। गाँधी के मन में बापा के कार्यों के प्रति आकर्षण और भी गहरा हुआ। 1921 में वे स्वयं ओडीशा पहुँचे और अपना अनुभव *नवजीवन* पत्र में प्रकाशित किया। गाँधी ने लिखा :

> इन लोगों में प्राणों की ज्योति धीरे-धीरे मंद पड़ती जा रही थी। वे निराशा की सजीव मूर्ति जैसे थे। उनकी पसलियाँ एक-एक करके गिनी जा सकती थी। एक-एक नस फूल कर बाहर आ पड़ी थी।

किसी के शरीर पर मांस या स्नायु का नाम नहीं था। सिमटी हुई झुर्रियों वाली चमड़ी और हड्डियाँ ही नज़र आती थीं। आँखों का तेज़ उड़ गया था। सबके चेहरों पर मानों मर जाने की इच्छा फैली हुई थी। ऐसा मालूम होता था मानो जो मुट्ठी-भर चावल उन्हें मिलता था उसके सिवाय इस संसार में और किसी चीज़ में उनकी दिलचस्पी नहीं रह गयी थी। दाम ले कर वे काम करने को तैयार नहीं थे। प्रेम के लिए करते या नहीं, कौन जाने? हमारे दिये हुए मुट्ठी भर चावल खाकर वे अपना जीवन टिकाए हुए थे। यह भी कहीं वे हम पर मेहरबानी ही न कर रहे हों। इस प्रकार की स्थिति में फँसे हुए ये स्त्री-पुरुष हमारे ही भाई-बहन इस प्रकार धीरे-धीरे यातनाएँ भोगकर मौत की शरण में जा रहे थे। यह मैंने अपने अनुभव में सबसे करुणाजनक घटना जानी है। उनके लिए तो ज़िंदगी का अर्थ मजबूर हो कर सहन किया जाने वाला अखण्ड उपवास है। और जब वे सदाव्रत का चावल खाकर प्रसंगोपात अपना उपवास तोड़ते हैं, तब ऐसा लगता है कि कहीं वे हमारे सुख-चैन भरे निष्ठुर जीवन के लिए हमें शरमाने को तो नहीं कह रहे हैं। (*जीवनी* : 129)

जनता के सामने सरकारी अव्यवस्था और ग़ैर-ज़िम्मेदाराना हरकतों का ऐसा भण्डाफोड़ करके ठक्कर बापा का क़द और ऊँचा होता चला गया। लम्बे अंतराल में इस घटनाक्रम के कुछ आनुषंगिक परिणाम भी आये। ओडीशा के कई कद्दावर नेताओं, जैसे हरिकृष्ण मेहताब और बाबू नवकृष्ण चौधरी, की सेवा-शिक्षा ठक्कर बापा के हाथों हुई। उक्त विवाद से प्रेरणा लेकर कई लोगों ने ओडीशा में व्यवस्थित सार्वजनिक जीवन में मुखर रूप से भाग लेना आरम्भ किया। इनमें से कुछ तो ठक्कर बापा को ओडीशा के आधुनिक जीवन का पिता भी मानते थे।

इस तरह के विवरण छपने से चारों ओर ओडीशा सरकार की आलोचना होने लगी और अंततः वह अपनी कुम्भकर्णी नींद से जागी। ऊँचे पदों पर बैठे लोगों ने बचाव की मुद्रा अख़्तियार की और ठक्कर द्वारा सार्वजनिक किये गये दावों पर स्पष्टीकरण माँगा। मगर बापा ने दबाव में आने के बजाय सरकार द्वारा प्रकाशित बयान का मुँहतोड़ जवाब दिया। सर्वेंट्स ऑफ़ इण्डिया के साप्ताहिक मुखपत्र में 8 जुलाई, 1920 को प्रकाशित लेख 'द मडल ऑफ़ पुरी फ़ैमिन' में ठक्कर ने लिखा :

यह कथित असावधानी सुधारने में सरकार स्वयं कुछ गम्भीर भूलें कर बैठी है और लोगों के दुःख हलके बताने के लिए दूसरों का किया हुआ काम उसने अपने नाम पर चढ़ा दिया है। कर्मचारियों की अक्षम्य भूलों पर कलई चढ़ा कर उन्हें सुंदर दिखलाने का प्रयत्न किया है। साथ ही सरकार के हाथों हुई भूलें और दोष दूसरों के मत्थे मढ़ दिये हैं और एक युरोपियन आईसीएस कमिश्नर को बचाने के लिए भारतीय कलेक्टर को बलि का बकरा बनाया है। ये शब्द बहुत कड़े हैं, किंतु, ये शब्द घटनास्थल पर पूरे दो महीने रहकर इस प्रश्न के बारे में पूरी तरह वाक़िफ़ होने के बाद ही लिखे गये हैं। ... भुखमरी के कारण होने वाली मृत्यु की जाँच करने के लिए अगर एक निष्पक्ष कमेटी गठित की जाए तो जनता के सामने ऐसी सैकड़ों घटनाएँ लाई जाएँगी। तब चीज़ें अपने असली ढंग में स्वतः सामने आ जाएँगी। परंतु कलेक्टर और कमिश्नर द्वारा, जिन्हें लोग अपने दुःखों की भीषणता के लिए ज़िम्मेदार मानते हैं, जाँच की गयी तो इसका कोई परिणाम नहीं होगा।

गुलामी के दौर में खुर्राट अंग्रेज़ अफ़सरानों के ख़िलाफ़ इस

तरह की निडर और सार्वजनिक बयानबाज़ी अत्यंत दुर्लभ थी। जनता के सामने सरकारी अव्यवस्था और ग़ैरज़िम्मेदाराना हरकतों का ऐसा भण्डाफोड़ करके ठक्कर बापा का क़द और ऊँचा होता चला गया। लम्बे अंतराल में इस घटनाक्रम के कुछ आनुषंगिक परिणाम भी आये। ओडीशा के कई कद्दावर नेताओं, जैसे हरिकृष्ण मेहताब और बाबू नवकृष्ण चौधरी, की सेवा-शिक्षा ठक्कर बापा के हाथों हुई। उक्त विवाद से प्रेरणा लेकर कई लोगों ने ओडीशा में व्यवस्थित सार्वजनिक जीवन में मुखर रूप से भाग लेना आरम्भ किया। इनमें से कुछ तो ठक्कर बापा को ओडीशा के आधुनिक जीवन का पिता भी मानते थे।

ख़ैर, ओडीशा का कष्ट-निवारण गाँधी और ठक्कर के बीच प्राकृतिक आपदा से निपटने हेतु आगे विकसित होने वाले तंत्र की पहली कड़ी मात्र था। 1918 से 1944 तक के पच्चीस वर्षों में अकाल-दर-अकाल तथा बाढ़-दर-बाढ़ के दौरान ठक्कर बापा प्रभावित क्षेत्र में पहुँचते, कर्मठ सेवकों का दल जुटाते और कष्ट-निवारण कार्य को युद्धस्तर पर संचालित करते। यह सारा ताना-बाना बग़ैर आर्थिक मदद के खड़ा नहीं किया जा सकता था। धन-बल जुटाने के लिए ठक्कर गाँधी जी की बढ़ती साख का सहारा लेते। ठक्कर उन्हें आपदाग्रस्त इलाक़ों में व्याप्त मानवीय व्यथा का विवरण देते हुए ख़त लिखते। इन पत्रों के चुनिंदा मार्मिक हिस्सों को गाँधी स्वयं द्वारा संचालित अपने मुखपत्रों, जैसे *नवजीवन* (गुजराती) या *यंग इण्डिया* (अंग्रेज़ी) में प्रकाशित करके आर्थिक मदद की गुहार लगाते। सम्पन्न लोग उदारतापूर्वक दान करते। ऊपर से गाँधी जी की मुहर तो थी ही। स्वयं बापू भी आश्वस्त थे कि पाई-पाई का हिसाब रखने में माहिर ठक्कर बापा चंदे की राशि को ज़िम्मेदारी से ही व्यय करेंगे। 1927 से 1929 तक लगातार तीन वर्षों के चौमासों में क्रमशः गुजरात, सिंध और सिलहट (असम) में भयानक बाढ़ ने तबाही मचायी। इन सभी प्रभावित इलाक़ों में ठक्कर बापा अपने सेवकों की सेना लेकर पहुँचे और कष्ट-निवारण में उल्लेखनीय अंशदान दिया। असम की बाढ़ (1929) के दरमियान तो पूरा भारतवर्ष की वैश्विक आर्थिक मंदी की चपेट में था। ऐसी स्थिति में चंदे की राशि भी ज़रूरत से कहीं कम इकट्ठा हो रही थी। इस नाजुक क्षण में भी बापा ने हिम्मत नहीं हारी और चरखा-कताई को कष्ट-निवारण कार्य का मुख्य औज़ार बनाया। इस तरह बापा ने पेशेवर अकाल-बाढ़ प्रबंधन की बुनियाद रखी।

क़रीब पच्चीस साल की अवधि में ठक्कर बापा में निहित सेवाभाव की पराकाष्ठा 1943 में देखने को मिली। वह वर्ष हमारे देश के इतिहास में उल्लेखनीय था क्योंकि एक के बाद एक प्रांत लगातार अकाल की चपेट में आ रहे थे। जहाँ पश्चिम भारत में मुम्बई प्रांत का बीजापुर ज़िला घोर अकाल से जूझ रहा था, वहीं पूर्व में बंगाल तथा ओडीशा में बीसवीं सदी की सबसे भयानक क्षुधा पाँव पसार चुकी थी। दूसरा विश्व-युद्ध अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था। जापानी सेना उत्तर-पूर्व भारत पर दस्तक दे रही थी। इस घटनाक्रम से अंग्रेज़ हुकूमत घबरा गयी। उसके आला सियासतदानों ने विशेषकर अगस्त, 1942 (भारत छोड़ो आंदोलन) के बाद बंगाल और ओडीशा में निषेधात्मक नीति अख़्तियार कर ली। इसके तहत इन प्रांतों में अनाज एवं अन्य रसद सामग्री लाना दुष्कर हो गया था। ऊपर से अक्टूबर, 1942 में आये समुद्री तूफ़ान से बंगाल के मिदनापुर, ओडीशा के कटक तथा बालासोर ज़िलों के तटीय गाँवों में ज़बरदस्त तबाही मचाई थी।

ठक्कर बापा ने इन विनाशकारी प्राकृतिक आपदाओं से निपटने के लिए ज़बरदस्त परिश्रम किया। रामेश्वरी नेहरू के साथ मिलकर उन्होंने बंगाल और ओडीशा के अकाल-पीड़ित क्षेत्रों का व्यापक दौरा किया। इन नेस्तनाबूद इलाक़ों से लौटने के पश्चात् बापा और नेहरू ने वहाँ की परिस्थिति का इस प्रकार वर्णन किया :

> बंगाल की हालत आँखों देखे बिना कोई भी आदमी वहाँ की परिस्थिति की सही कल्पना नहीं कर सकता। गाँव के गाँव उजाड़ और वीरान हो गये हैं, मनुष्यों का तो वहाँ नाम-निशान भी नहीं। हज़ारों की संख्या में लोग घरबार छोड़कर शहरों में आ गये हैं। बालक अपने माता-पिता से जुदा

> हो गये हैं और स्त्रियाँ अपने पतियों से। सबको अपना-अपना पेट भरने की फ़िक्र पड़ी है और एक जगह से दूसरी जगह भटक रहे हैं। उनके शरीरों में केवल हड्डी-पसली बाक़ी रही है। स्त्रियों के पास अपनी लाज ढकने को भी पूरा कपड़ा नहीं। बच्चे गंदी नालियों में बहने वाले साग या फलों के छिलकों पर लड़ते नज़र आते हैं। सड़कों और बाज़ारों में जगह-जगह मुर्दे पड़े रहते हैं। उन्हें उठा कर ले जाने वाला कोई नहीं है। इसलिए कुत्ते और गिद्ध लाशों को खा जाते हैं। मरते हुए बालकों को कभी-कभी आख़िरी साँस लेने से पहले ही कुत्ते पैर पकड़ कर घसीट ले जाते हैं।

बापा ने कई जगहों पर एक साथ आये अकाल के संकट को अत्यंत गम्भीर क़रार देते हुए सितम्बर, 1943 में 'भारतव्यापी संकट : देश के लिए आयी कसौटी की घड़ी' नामक लेख प्रकाशित किया। उनके इस प्रयास से जगह-जगह लोगों का देश प्रेम जागा। *हिंदुस्तान टाइम्स* और *गुजरात समाचार* जैसे अख़बारों ने भूखे बंगाल के लिए कोष खोले और उसमें लाखों की रक़म जमा हुई। ज़रूरत के अनुसार ठक्कर बापा ने वक्तव्य प्रकाशित करके, अख़बारों में विशेष लेख लिख कर तथा सरकारी व ग़ैर-सरकारी कष्ट-निवारण कार्यों को चाबुक लगा कर गति देने का प्रयास किया। पुरुषार्थ के धनी ठक्कर बापा के लिए यह अत्यंत कठिन परिश्रम का दौर था। दिनकर देसाई जो कि बीजापुर अकाल निवारण समिति में बापा के साथी थे तथा कालांतर में मुम्बई राज्य के शिक्षा-मंत्री बने, ने अपने संस्मरण में लिखा :

> मैंने उन्हें पूरी नींद या आराम लिए बिना इन अभागे लोगों के लिए बीस-बीस घंटे सतत् काम करते देखा है और वह भी 74 वर्ष की पकी उम्र में। जवान भी उनके सामने शर्म महसूस करते थे, क्योंकि सख़्त काम करने के मामले में वे कभी बापा की बराबरी नहीं कर सकते थे बल्कि उनसे कहीं पीछे रहते थे। (*जीवनी* : 337)

इसी प्रकार 1943-44 के ओडीशा अकाल के वक़्त बापा की अध्यक्षता में चल रही ओडीशा कष्ट-निवारण समिति सबसे प्रमुख संस्था थी। इस राहत-कार्य में कटक शहर के सेठ सुंदरलाल के पुत्र ने 1943 में ठक्कर बापा के मातहत काम किया। बापा की दिनचर्या का वर्णन करते हुए वे कहते हैं :

> बापा सुबह ही जल्दी उठ जाते और शौचादि से निपट कर प्रार्थना के बाद काम में लग जाते। दिनभर सहायता का काम बाँटते, अकाल-पीड़ितों को व्यवस्थित ढंग से बिठाने और उन्हें एक के बाद एक बारी-बारी से सहायता की चीज़ बाँटी जाए, यह सब देखने में सारा समय बिताते। खाने में भी इस कारण काफ़ी देर हो जाती। इस समय बापा काम में इतने अधिक डूबे हुए रहते कि बहुत बार वे नींद और आहार दोनों छोड़ देते। हम भी उनके साथ सुबह से शाम तक काम करके थक कर लोथ-पोथ हो जाते और आँखों में नींद इतनी भर जाती कि अभी बिस्तर पर पड़ कर सो जाएँ। परंतु बापा तो उस समय दिन भर में बाँटे गये अनाज, कपड़ों बगरा की सूचियाँ मिलाते, हिसाब जोड़ते और जोड़ बाक़ी करते थे। (*जीवनी* : 347)

ठक्कर बापा का कार्य-क्षेत्र अत्यंत विस्तृत था और देश के सबसे दुर्गम क्षेत्रों में आयी आपदाओं में भी वे तुरंत मदद करने के लिए कूद पड़ते। उनके मार्गदर्शन में कर्मठ सेवकों की एक पूरी पीढ़ी तैयार हुई। उन्होंने प्राकृतिक आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में ख़ूब नाम कमाया। बाबू जगजीवन राम ने बापा के अस्सीवें जन्मदिन के उपलक्ष्य पर उन्हें आधुनिक युग के दधीचि की संज्ञा दी।

IV

आदिवासी कल्याण

ठक्कर बापा के लम्बे सेवा जीवन की शायद सबसे महत्त्वपूर्ण और दूरगामी नतीजों की धुरी थी— आदिवासी कल्याण। आदिवासियों से उनका परिचय कराने का श्रेय इंदुलाल याज्ञनिक को जाता है। 1918 के चौमासे में पंचमहाल ज़िले में बहुत कम वर्षा हुई। अनाज और चारे की चौतरफ़ा तंगी से त्राहि-त्राहि मच गयी। सबसे बुरी तरह प्रभावित ज़िले के दाहोद-झालोद तालुक़ों में बसे भील आदिवासी

हुए। इस पहाड़ी क्षेत्र में उनके हालात एक अर्से से दयनीय बने हुए थे। पूरी आबादी का चौथा हिस्सा रहे ये डेढ़ से दो लाख भील कुछेक बनियों और बोहरों के कर्ज़ में नाक तक डूबे हुए थे। पहले से निर्धन एवं निर्वस्त्र ये भीलजन अब घोर अकाल की मार झेल रहे थे। इनमें से अधिकतर भोजन के अभाव में निर्जीव कंकाल-प्राय: हो चुके थे।

पंचमहाल ज़िले की दिनों-दिन बिगड़ती स्थिति की विस्तृत जानकारी इंदुलाल को मिली। उन्होंने शीघ्र ही अपने गुजराती पत्र *नवजीवन अने सत्य* में इस इलाक़े के सरकारी कर्मचारियों की कोताही और कुशासन का पर्दाफ़ाश करने वाले उग्र लेख छापे। इस क्षेत्र के विषय में यह ठोस तथ्य उन्हें सुखदेव विश्वनाथ त्रिवेदी नामक एक बाह्मण मिस्त्री प्रदान करते थे। दाहोद-निवासी सुखदेव ने अपनी एक दशक लम्बी सरकारी नौकरी में पंचमहाल ज़िले के चप्पे-चप्पे में कार्य किया था। उन्हें भीलों की भाषा भिलोरी का भी अच्छा ख़ासा ज्ञान था। दयालु हदय के इस सज्जन पुरुष ने राजकर्मियों, साहूकारों, ज़मींदारों, शराब-ठेकेदारों, तांत्रिकों और व्यापारियों द्वारा भीलों का ज़बरदस्त उत्पीड़न क़रीब से देखा था। अकाल के दौरान उनकी व्यथा और भी विकट हो गयी थी। इस पर भी सरकारी प्रशासन नाम का कष्ट-निवारण कार्य ही कर रहा था। उनकी ज़्यादा मदद कर पाने में असमर्थ सुखदेवभाई ने 1914 में अपनी नौकरी को ठोकर मार कर ताउम्र भीलों की सेवा करने का निश्चय किया।

जनवरी, 1919 में सुखदेवभाई ने इंदुलाल याज्ञनिक को अकाल-ग्रस्त इलाक़े का मुआयना कराया। आपदा के बारे में सुनना एक बात थी किंतु याज्ञनिक जब वस्तु:स्थिति से रूबरू हुए तो उनका दिल दहल गया। अपना दौरा समाप्त करके याज्ञनिक ने दाहोद में व्याप्त आपदा का आँखों-देखा विवरण मुम्बई के प्रमुख पत्र *बॉम्बे क्रॉनिकल* में प्रकाशित करवाया। यह भीलों पर आयी प्राकृतिक मार का ब्योरा भर नहीं था, अपितु इसमें सरकारी कर्मचारियों द्वारा अवैध लगान-वसूली, उनके झोपड़ों को ढहाना और उनके छज्जे की टाइलें (खपरैल) ज़ब्त करने जैसी क्रूर घटनाओं और नीतियों पर भी रोशनी डाली गयी थी। इस लेख का संज्ञान लेते हुए मुम्बई के प्रतिष्ठित व्यक्ति पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास ने भी अपने प्रांत की ग़ैर-सरकारी आपदा-निवारण कमेटी की तरफ़ से ठक्कर बापा से ज़मीनी हक़ीक़त की तह में जाने का निवेदन किया। और तो और, स्वयं गाँधी ने भी ठक्कर को पत्र लिख कर इस दु:खद घटनाक्रम की ओर ध्यान आकृष्ट किया था। ख़ुद ठक्कर बापा भी इस लेख से भाव-विह्वल हो चुके थे। इस वक़्त वे जमशेदपुर में मज़दूर कल्याण में लिप्त थे। पिछले कुछ महीनों के परिश्रम से सहायता-कार्य का बुनियादी ढाँचा जम चुका था। अत: मार्च, 1919 में उन्होंने जमशेदपुर में काम के संचालन की बागडोर विश्वसनीय हाथों में सौंप दी और ख़ुद दाहोद की तरफ़ कूच कर गये।

ठक्कर बापा का पहले-पहल पंचमहाल ज़िले में पदार्पण भारतीय आदिवासियों के इतिहास में मील का पत्थर साबित होने वाली थी। उनकी आदिवासी प्रेम-लीला का श्रीगणेश हो चुका था। सुखदेव भाई ने बैलगाड़ी को हाँका और उन्हें अकाल-पीड़ित इलाक़े से अवगत कराया। इस यात्रा के दौरान जो प्रसंग घटित हुए उसने इन दोनों सहयात्रियों को एक आजीवन डोर में बाँध दिया। कालांतर में सुखदेवभाई ठक्कर बापा द्वारा स्थापित और संचालित भील सेवा मण्डल के सबसे प्रमुख कार्यकर्त्ता के रूप में उभरे। स्वयं ठक्कर ने सुखदेव काका को भील सेवा का पिता और ख़ुद को माता कहना पसंद किया।

दाहोद से मुम्बई लौट कर ठक्कर बापा ने पंचमहाल अकाल के विषय पर एक विस्तृत रपट तैयार की और मुम्बई प्रांत की ग़ैरसरकारी अकाल-निवारण समिति को सौंप दी। इस ब्योरे में ज़मीनी यथास्थिति और कष्ट-निवारण कार्य के मूल्यांकन के अलावा आगे की कार्य-योजना भी पेश की गयी। भारत सेवक समाज के मुखपत्र में भी एक समीक्षा-लेख प्रकाशित हुआ। इस प्रकार पंचमहाल अकाल के ऊपर दिलचस्पी बढ़ी और रसद इत्यादि की मदद हेतु चंदे की ज़रूरी राशि जुटाने के प्रयत्नों को भी बल मिला।

भीलों पर आयी विपदा अभी और गहराने वाली थी। 1922 में पंचमहाल ज़िले में अकाल की पुनरावृत्ति हुई। ठक्कर ने दाहोद-झालोद के भील क्षेत्रों का एक और विस्तृत दौरा किया, सहायता की रक़म जुटाई और कष्ट-निवारण कार्यों का संचालन किया। जनवरी से जून, 1922 तक चला यह प्रवास ठक्कर बापा के हृदय पर अमिट छाप छोड़ गया। इस दौरान उनकी पैनी विश्लेषणात्मक नज़र ने भीलों के जीवन का बहुत बारीक़ी से अध्ययन किया। भीलों के बारे में कई घिसी-पिटी धारणाएँ प्रचलित थीं। वे जंगली व क्रूर होते हैं; सभ्य मनुष्यों से दूर रहते हैं; आबदस्त नहीं लेते (अर्थात शौच के बाद पानी का उपयोग नहीं करते;) जंगली जानवरों का शिकार व मांस-भक्षण करते हैं; उनका यौनाचार मर्यादा से कोसों दूर व्यभिचारी होता है, इत्यादि।

भीलों से सीधे सम्पर्क में आने के बाद ठक्कर को विश्वास हो चला कि इस धारणाओं में एक हद तक ही सच्चाई है। भारत सेवक समाज के 22 जून, 1922 के मुखपत्र अंक में उन्होंने साहूकारों द्वारा पोषित ऋणग्रस्तता के दलदल को भीलों की दयनीय आर्थिक स्थिति के पीछे का प्रमुख कारण बताया। उनकी निरक्षरता ने भी पेचीदगी भरी विधि-व्यवस्था के समक्ष उन्हें पंगु बना दिया था। उनकी नासमझी का सबसे ज़्यादा नाजायज़ फ़ायदा पुलिस, वन और राजस्व महक़मों के कर्मचारी उठाते थे तथा वे ही उनके मुख्य उत्पीड़क थे। ठक्कर बापा ने मिशनरी भावना से लैस कुछ कर्मठ कार्यकर्त्ताओं के लिए आह्वान किया जो भील समाज में व्याप्त अशिक्षा, अंध-विश्वास, शराबखोरी, ऋणग्रस्तता इत्यादि बुराइयों का शनैः शनैः जड़ से उन्मूलन करें। उन्होंने इस लेख में पंचमहाल में भील उन्नयन को समर्पित एक संस्था की स्थापना की आवश्यकता को भी रेखांकित किया।

इस बार ठक्कर बापा के मन-मस्तिष्क में भीलों की सेवा के लिए संस्था का विचार ज़ोर पकड़ रहा था। वैसे इंदुलाल याज्ञनिक के प्रयत्नों से इसकी पृष्ठभूमि तैयार की जा चुकी थी। इस समय सुखदेवभाई एक अन्य प्रमुख सेवक डाहयाभाई नायक के साथ मीराखेड़ी नामक स्थान पर एक अंत्यज आश्रम चला रहे थे। यहाँ पर भील बच्चों के बीच शिक्षण व सेवा-कार्य निर्बाध रूप से दो वर्षों से चल रहा था। इंदुलाल के निर्देशानुसार इसका संचालन होता और इसका ख़र्च कांग्रेस की गुजरात प्रांतीय कमेटी वहन करती थी। 1922 में याज्ञनिक गाँधी के असहयोग आंदोलन में गिरफ़्तार होकर जेल चले गये। चूँकि उनका ठक्कर बापा से प्रगाढ़ संबंध था, इसलिए उन्होंने मीराखेड़ी आश्रम का संचालन बापा के हाथों सौंप दिया और भील सेवा कार्य के भविष्य के प्रति आश्वस्त हो गये।

जब अकाल कष्ट-निवारण का काम समेटा गया तो 5 नवम्बर, 1922 को दाहोद का अकाल निवारण केंद्र ठक्कर बापा द्वारा स्थापित

ठक्कर बापा को वेरियर एल्विन ने आत्मसातवादी क़रार दिया यानी ऐसे लोग जिनका मानना था कि आधुनिक राष्ट्र की मुख्यधारा में आदिवासी समूहों को सम्मिलित करना बेहद ज़रूरी है। ... आदिवासियों के बारे में दूसरा रवैया संरक्षकवादी कहलाता था जिनमें अधिकतम आदिवासियों से सहानुभूति रखने वाले अंग्रेज़ प्रशासनिक अफ़सर व विद्वान थे। इनका मानना था कि आदिवासी समूह परम्परागत हिंदू समाज से भिन्न थे और प्रातिनिधिक जनतंत्र को यदि आदिवासी क्षेत्रों पर थोपा गया तो उसके बड़े दूरगामी एवं अवांछनीय परिणाम होंगे।

भील सेवा मण्डल के मुख्यालय में तब्दील हो गया। जल्द ही ठक्कर ने प्रस्तावित संस्था की पूरी रूप-रेखा बनाकर मासिक *युगधर्म* और भारत सेवक समाज के मुखपत्रों में प्रकाशित भी कर दी। इन लेखों में धनवानों से मण्डल के विभिन्न कार्य-कलापों हेतु चंदे का आह्वान किया गया था। अर्थ के अलावा ठक्कर बापा की मुख्य चिंता थी मिशनरी ढंग के युवकों का एक दल खड़ा कर उन्नयन कार्य को शुरू करने की। सौभाग्य से बापा की झोली में उनके आह्वान से प्रेरित होकर कुछ तेज़-तर्राक नवयुवक भी गिर पड़े। इनमें प्रमुख थे मुम्बई के एक रईस घराने के युवा कांग्रेसी कार्यकर्त्ता लक्ष्मीदास श्रीकांत, उनके मित्र पांडुरंग वणीकर, ईश्वरलाल वैद्य, रूपाजीभाई परमार, मगनलाल मेहता एवं अम्बालाल व्यास।

इस छोटी लेकिन कर्मठ और जुझारू टोली ने ठक्कर बापा के नेतृत्व में पंचमहाल ज़िले के दाहोद-झालोद तालुक़ों में धीरे-धीरे भील सेवा मण्डल के कार्यों को स्थापित करने का बीड़ा उठाया। बापा ने ख़ुद सन् 1932 तक पूरे एक दशक का समय लगभग पूर्ण रूप से भील सेवा मण्डल को समर्पित कर दिया। इस पूरी अवधि में दाहोद का केंद्र उनका मुख्यालय रहा। पहले छह महीनों में ही चार पाठशालाएँ, एक छात्रालय, एक औषधालय और दो जगह सहकारी समितियाँ शुरू की गयीं। धीरे-धीरे इनकी संख्या में इज़ाफ़ा होता रहा और तीन वर्षों के अंत में कुल चार आश्रम तथा आठ पाठशालाएँ सुचारु रूप से चलने लगीं। कुल मिला कर क़रीब 500 भील बालक पढ़ाई करने लगे। पहले की ही भाँति बापा ने बैलगाड़ी को अपना वाहन बनाया और हर माह वह मण्डल द्वारा संचालित प्रत्येक केंद्र का एक बार निरीक्षण अवश्य करते। इस प्रकार दाहोद में वह मास के दस दिन ही बिताते थे। बाक़ी पूरा समय उन्होंने इस संस्था के सेवा-कर्म को स्थायी रूप देने में लगाया।

इस भगीरथ कार्य का आगाज़ तो हो चुका था किंतु इस दुर्गम क्षेत्र में मण्डल की राह आसान न थी। सबसे बड़ी समस्या तो निरंतर धनाभाव की थी। वर्ष दर वर्ष मण्डल का कर्ज़ बढ़ता रहता और सिर पर आर्थिक संकट के बादल मँडराते रहते थे। हर बार वार्षिक रपट में ठक्कर बापा लिखते कि 'मण्डल की आर्थिक स्थिति संतोषजनक नहीं'। हालाँकि बापा की सेवा-क्षेत्र में ऐसी बेहतरीन साख थी कि दान-दाताओं ने मण्डल का कार्य कभी ठप्प नहीं होने दिया।

मण्डल की सफलता में दूसरी बड़ी बाधा थी क्षेत्र में भीलों के उत्पीड़कों का स्थापित स्वार्थ। उन्हें इस बात का भय था कि अगर ये भोले-भोले आदिवासी पढ़-लिख कर जागृत हो गये तो उनके समस्त गोरखधंधे समाप्त हो जाएँगे। इसीलिए चाहे वह सूदखोर साहूकार हो अथवा वन, पुलिस, राजस्व विभागों के कर्मचारी या फिर शराब का ठेकेदार, सभी ने लामबंद होकर मण्डल की जड़ें न जमने देने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाया। बेगार, रिश्वत, मनमाने सूद की उगाही जैसे लाभ स्थायी रूप से बंद हो जाने की दहशत उनमें घर कर गयी। वे नये आश्रमों की स्थापना हेतु ज़मीन नहीं उपलब्ध होने देते और कार्यकर्ताओं को हतोत्साहित करने के लिए उन पर झूठे मुक़दमे ठोक देते। अड़ंगेबाज़ी का यह आलम था कि मण्डल से जुड़े सेवकों को किराये का घर मिलना मुहाल था। इन सब कठिनाइयों के बावजूद ठक्कर बापा कार्यकर्त्ताओं का ढाढस बँधाते और उनके गिरते हौसलों को पस्त नहीं होने देते।

एक अप्रत्याशित परेशानी का सबब विडम्बनापूर्वक ख़ुद भीलों के अंदर से भी उपजा। शिक्षा प्रचार-प्रसार मण्डल की सबसे प्रमुख गतिविधि थी। कार्यकर्त्ता बड़ी लगन से ख़तरों के बीच जीते थे और भील बालकों को साक्षर बनाने का गम्भीर प्रयत्न करते थे। शुरुआत में कौतूहलवश वे पाठशाला आते भी थे परंतु वनों में स्वच्छंद रूप से विचरने के आदी वे चंचल बालक जल्द ही अनुशासन की बेड़ियों को तोड़ कर कहीं भाग जाते। ऐसे बालकों को वापस खींचकर लाना और अन्य पर अनुशासन क़ायम रखना बड़ा ही दुष्कर कार्य था। इन सब कठिनाइयों के बावजूद ठक्कर बापा ने न ख़ुद हिम्मत हारी और न ही मण्डल के सेवकों को पथभ्रष्ट होने दिया। अपनी लगन, मेहनत, ईमानदारी और सेवा

भावना से बापा ने भील सेवा मण्डल को एक स्थायी स्वरूप दिया। आज भी यह संस्था भीलों के बीच ठक्कर बापा की दिखाई राह पर अग्रसर है।

पंचमहाल में काम का दायरा बढ़ाते-बढ़ाते ठक्कर बापा की रुचि भीलों जैसे ही भारतवर्ष के विभिन्न हिस्सों में फैले हुए आदिवासी समूहों में जागी। उन्होंने उपलब्ध मानवजाति वर्णन साहित्य (एथ्नोग्राफ़ी) का व्यवस्थित अध्ययन करना चालू किया। मौजूदा भौगोलिक जानकारी से भी ख़ुद को लैस करके उन्होंने जनवरी से अप्रैल, 1926 के दौरान कई आदिवासी बहुल क्षेत्रों में घुमक्कड़ी की। इस अवधि में उनके पाँव मध्य प्रांत (मण्डला व रायपुर ज़िले), संथाल परगना एवं असम (सिलहट, नागा पहाड़ियाँ, ख़ासी, चेरापूँजी और जेंतिया) के कई वनाच्छादित आदिवासी बहुल इलाक़ों में पड़े। दौरे के पश्चात् बापा ने इन क्षेत्रों में बसे आदिवासी जातियों के जीवन, समाज, रहन-सहन, आर्थिक सामाजिक पहलुओं एवं राजनीतिक स्थिति के विषय में विस्तृत लेख लिखे। गुजराती एवं हिंदी भाषाओं में ऐसा करने वाले वे सम्भवत: पहले भारतीय थे। ख़ुद गाँधी ने उनके लेख लगातार दो हफ़्तों तक अपने गुजराती पत्र *नवजीवन* में प्रकाशित किये और लिखा :

> भाई अमृतलाल ठक्कर अपने संन्यास को सुशोभित कर रहे हैं। उन्होंने भगवा नहीं पहना, अपने को संन्यासी बताते भी नहीं, फिर भी काम तो वे संन्यासी को शोभा देने वाला ही कर रहे हैं। बूढ़े हो गये हैं तो भी चैन से बैठते नहीं और अपने आसपास वालों को भी नहीं बैठने देते। जब दु:ख का दावानल चारों ओर जल रहा हो, तब चैन से कौन बैठ सकता है? अथवा आलसी ही बैठ सकता है। भाई अमृतलाल अछूतों के तो गुरु हैं ही। अब पहाड़ी जातियों के गुरु बनने की साधना कर रहे हैं। मैं आशा रखता हूँ कि उनके मर्मभेदी लेख सब कोई पढ़ेंगे और उन पर विचार करेंगे। जिन्होंने पिछले हफ़्ते का लेख न पढ़ा हो वे पढ़ लें। इस सप्ताह का भी पढ़ें और विचार करें। जो काम भाई अमृतलाल ने सुझाया है उसमें हम क्या और कैसे भाग ले सकते हैं, इसका विचार बाद में करेंगे।

गाँधी जैसी हस्ती से इस प्रकार का सार्वजनिक अनुमोदन प्राप्त कर ठक्कर बापा की आदिवासी विशेषज्ञता पर मानो मुहर लग गयी। अछूतों पर उनका कार्य विस्तृत और पुराना था ही। परिणामत: ब्रिटिश हुक़ूमत के हलक़ों में भी बापा को गम्भीरतापूर्वक लिया जाने लगा। 1928 में जब मुम्बई प्रेसीडेंसी सरकार ने आईसीएस अधिकारी एच.ओ.ई स्टार्ट की अध्यक्षता में अछूतों और आदिवासियों में मौजूद शैक्षणिक पिछड़ेपन का अध्ययन करने के लिए एक कमेटी का गठन हुआ, तो ठक्कर बापा को उसमें डॉ. भीमराव आम्बेडकर के साथ सदस्य मनोनीत किया गया। आधुनिक भारतीय इतिहास में यह ऐसी पहली अनोखी प्रशासनिक पहल थी। इस कमेटी के साथ ठक्कर बापा ने सुदूर सिंध जैसे क्षेत्रों का भी दौरा किया और कमेटी ने इन तबक़ों में शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव सरकार को सौंपे थे। 1937 में मिली चुनावी विजय के फलस्वरूप विभिन्न प्रांतों में जो कांग्रेस सरकारें सत्तारूढ़ हुईं, उनमें ठक्कर बापा अथवा उनके द्वारा मनोनीत भील सेवा मण्डल के सेवकों को आदिवासी कल्याण संबंधी जाँच कमेटियों में महत्त्वपूर्ण ओहदों पर सम्मिलित किया गया। ओडीशा राज्य में गठित आंशिक रूप से वर्जित क्षेत्रों की जाँच कमेटी के अध्यक्ष स्वयं ठक्कर बापा ही थे। इस कमेटी की रपट आदिवासी क्षेत्रों के बारे में राष्ट्रवादी सोच की बारीकियों को उजागर करती है।

1940 का दशक बाक़ी विषयों की भाँति आदिवासी मसलों के ऊपर भी एक ज़बरदस्त मंथन का दौर था। इस दशक की शुरुआत में ही आदिवासी मुद्दों के विशेषज्ञ एवं कार्यकर्त्ता दो घटकों में विभाजित हो चुके थे। ठक्कर बापा को वेरियर एल्विन जैसे लोगों ने आत्मसातवादी/हस्तक्षेपवादी क़रार दिया यानी ऐसे लोग जिनका मानना था कि आधुनिक राष्ट्र की मुख्यधारा में आदिवासी समूहों को सम्मिलित करना बेहद ज़रूरी है। यह समूह मानता था कि इस लक्ष्य की पूर्ति तभी सम्भव थी जब इन इलाक़ों में प्रातिनिधिक जनतंत्र पोषित किया जाए। ऐसा होने से कुछ समय बाद आदिवासियों में जागृति आएगी और उनके द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि अपने लिए क़ानून का राज स्थापित करेंगे।

आदिवासियों के बारे में दूसरा रवैया संरक्षकवादी कहलाता था जिनमें अधिकतम आदिवासियों से सहानुभूति रखने वाले अंग्रेज़ प्रशासनिक अफ़सर व विद्वान थे। इनका मानना था कि आदिवासी समूह परम्परागत हिंदू समाज से भिन्न थे और प्रातिनिधिक जनतंत्र को यदि आदिवासी क्षेत्रों पर थोपा गया तो उसके बड़े दूरगामी एवं अवांछनीय परिणाम होंगे।

कुछ मिला-जुलाकर इन दोनों धुरियों के घर्षण से उत्पन्न हुए विमर्श में ही भारतीय संविधान में आदिवासी बहुल क्षेत्रों के प्रशासन हेतु सम्मिलित पाँचवीं एवं छठवीं अनुसूची का तार्किक आधार छिपा हुआ है। जब इन अनुसूचियों और धाराओं को संविधान सभा ने भारतीय संविधान में समावेशित किया तो उस प्रक्रिया में भी ठक्कर बापा ने अहम भूमिका निभाई थी। वे हाशिये पर जी रहे इन समूहों के प्रमुख पैरोकारों में से एक थे।

अंततः ठक्कर बापा ने अपने देहावसान से कुछ समय पूर्व भारतीय आदिमजाति सेवक संघ की स्थापना की। इस भारतव्यापी संस्था ने सत्तर के दशक तक आदिवासी विषयों पर भारतीय राज्य सत्ता के साथ मिल कर कई उल्लेखनीय कार्यों को अंजाम दिया।

संदर्भ

जी.एम.पवार (2013), *द लाइफ़ ऐंड वर्क्स ऑफ़ महर्षि विट्ठल रामजी शिंदे* (अनु. सुधाकर मराठे द्वारा मराठी से अंग्रेज़ी) नयी दिल्ली.
सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय (खण्ड XIII :129).